सुरक्षा नैतिकता है। यद्यपि पहले भी सामाजिक नियम और प्राकृतिक नियम का विस्तृत व्याख्या कर चुके हैं । यहाँ जागृति और प्रामाणिकता पूर्वक उक्त तथ्यों को स्मरण में लाना उचित समझा गया है । यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यही है अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व के रूप में नियमित है फलतः अस्तित्व में व्यवस्था अक्षुण्ण है । मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य है । अतएव नियम त्रय पूर्वक ही मानव मानवापेक्षा और जीवन अपेक्षा को सार्थक बना सकता है ।

इस सहज आशय के साथ ही यह तथ्य हर मेधावी व्यक्ति में,से, के लिए स्पष्ट होना स्वाभाविक है कि हम सर्वमानव बंधन मुक्ति रूपी जागृतिपूर्वक ही सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होते हैं । ऐसे जागृति सम्पन्नता में, से, के लिए मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार विधि ही एक मात्र उपाय है । मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार का मूल वस्तु जीवन ज्ञान, अस्तित्व-दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान है । यह मानव जागृति परंपरा के लिए सार्थक सिद्ध होता है ।

चेतना विकास, मूल्य शिक्षा का अध्ययन कराना ही शिक्षा का मानवीयकरण है ।

download full book from www.madhyasth.org

अध्याय 6

दृष्टा, कर्ता, भोक्ता

जीवन ही दृष्टा है-मानव परंपरा में जागृति प्रमाणित होता है ।

मानव में किंवा हर मानव में देखने का दावा समाहित है। इसी के साथ और भी देखने की कामना बनी ही रहती है । ये दावा और कामना आँखों से जो कुछ भी दिख पाता है उसी के लिए अधिकतर संख्या में मानव जूझता हुआ देखने को मिलता है यह सर्वविदित तथ्य है । इसी क्रम में और देखने की विधि से प्रकारान्तर से पूरा धरती पूर्व से पश्चिम तक, उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक और दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक देख लिया । इसी के आधार पर धरती का सर्वेक्षण कार्य भी सम्पन्न हुआ । इसी क्रम में आगे ग्रह-गोलों को, अनेक सौर व्यूह को देखने की इच्छा निर्मित होती रही । किसी एक पीढ़ी में धरती के मानव चाँद तक जाकर वापस आ गए । चन्द्रमा धरती के सदृश्य ठोस गड्ढे और पत्थर का होना बताया । वहाँ पानी और वनस्पतियाँ न होने का सत्यापन किया । वहाँ हवा का दबाव नहीं है बताया । वहाँ गये हुए आदमी इसी धरती से पानी और हवा को ले गये थे । सांस लेने के लिए हवा, पीने के लिए पानी आवश्यक रहा ही होगा । इससे बहुत बड़ी-भारी एक कौतूहलात्मक बाधा टल गई कि अन्य धरती से इस धरती तक आदमी पहुँच सकता है । यह एक बड़ी उपलब्धि इस शताब्दी का रहा है । इसमें मानव के लिए सकारात्मक पक्ष

यही है न जाने चाँद धरती के साथ कितने समय से रहा है उसमें अभी तक मानव, जीव, वनस्पति योग्य परिवेश बना नहीं। इस धरती पर इन सबके योग्य वातावरण समृद्ध हो चुका है । यह लाभ मानव को हुआ । उसके उपरान्त अनेकानेक प्रयोगों से अन्य धरती जिस पर इस सौर व्यूह के सीमा में कहीं होने का कल्पना से विभिन्न देशों से अंतरिक्ष यानों को भेजकर (उपग्रह) देखा गया । अभी तक इस सौर व्यूह में जीव-वनस्पति से समृद्ध अन्य धरती का पता नहीं लगा है । सर्वाधिक ग्रहों को विरल अवस्था में ही होना पाया गया । कई ग्रहों के साथ एक से अधिक चन्द्रमा (उपग्रह) का होना भी बताया गया। ये सब देखने के क्रम में ही विस्तृत आंकलन मानव के पास पहुँच चुका है ।

उक्त देखने की परिकल्पना विधि से मानव पर जो कुछ भी प्रतिबिम्बित, प्रभावित रहता है वह सब मानव के लिये देखने की वस्तु के रूप में रहता ही है । उल्लेखनीय तथ्य यही है आँखों से अथवा सभी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखा हुआ वस्तु अपने स्वरूप में दिखता नहीं। यह बात सर्वेक्षण पूर्वक प्रमाणित होता है कि आँखों पर ही वस्तु का सर्वाधिक भाग प्रतिबिम्बित होता है । बाकी अन्य प्रणालियों से उतना अधिक भाग चित्रित नहीं हो पाता है । आँख के अनन्तर शब्द और कहानी द्वारा मानव की कल्पना में बहुत सारा चीज आता है । ऐसे कथाओं के आधार पर किये गये कल्पनाएँ आँखों में आता नहीं । यही मुख्य मुद्दा है । सर्वमानव के साथ यही घटना घटती रहती है । चाहे कितने ही श्रेष्ठ अभ्यासों में परिपक्व क्यों न हुआ हो, चाहे

सामान्य व्यक्ति क्यों न हो इस तथ्य का सर्वेक्षण हर व्यक्ति कर सकता है । यही मुख्य बिन्दु है **आँखों से अधिक कल्पना होता है ।** साथ ही कल्पनाएँ आँखों में दिखती नहीं है । यही व्यथा हर मानव के साथ कमोबेशी बना हुआ है ही । इस मुद्दे में मुख्य रूप में जो विषमता का आधार है वह है देखने का परिभाषा । अभी तक आँखों पर जो कुछ भी प्रतिबिम्बित रहती है, दिखने की वस्तु यही है ऐसी ही मान्यता के आधार पर मानव सहज आँखों से अधिक शक्तिशाली यंत्र-उपकरण को बनाकर भी देखा गया । उपकरणों से दूर की चीज अथवा बहुत छोटी चीज को देखा भी है । इन उपकरणों से परमाणुओं एवम् परमाणु अंशों को देखने का दावा भी किये हैं और दूर में स्थित ग्रह-गोलों को, नक्षत्रों को देखने का सत्यापन किये हैं।

यह सर्वविदित तथ्य है आँखों में जो कुछ भी प्रतिबिम्बित होती है इसे आगे देखने पर पता चलता है मानव की आँखों में जो कुछ भी घटना और रूप दिख पाता है वह आंशिक भाग ही रहता है । हर रूप स्थिति में गति होना पाया जाता है । इस क्रम में रूप का परिभाषा जो आकार, आयतन, घन है उसमें से आकार का ही आंशिक भाग आँखों में प्रतिबिम्बित होता है । आकार और आयतन, घन अविभाज्य है । जो कोई भी आकार है सत्ता रूपी ऊर्जा में, शून्य में समायी रहती है, सभी ओर से सीमित रहता ही है । यही उस वस्तु का विस्तार अथवा आयतन का तात्पर्य है । आकार का स्वरूप लंबा, चौड़ा, ऊँचा, मोटा, गहरा, गोल, चपटा, बेलनाकार, विभिन्न संख्यात्मक कोणाकार

में होना पाया जाता है । ऐसे सभी रूप में, से केवल आकार, आयतन का आंशिक भाग ही आँखों में प्रतिबिम्बित हुआ रहता है इससे किसी वस्तु का वर्तमान में होना स्वीकार होता है । स्वीकारने का पक्ष जीवन पक्ष का ही कार्यप्रणाली है ।

हर परस्परता में पत्थर-पत्थर अथवा मृदा, पाषाण, मणि, धातुओं के परस्परता में, अन्न-वनस्पति की परस्परता में, पदार्थावस्था और प्राणावस्था की परस्परता में भी परस्पर प्रतिबिम्बन क्रिया बना ही रहता है । उसका सिद्धांत यही है **'बिम्ब का प्रतिबिम्ब रहता ही है'** । इसी क्रम में मानव का प्रतिबिम्ब, मानव सहित अन्य प्रकृति के साथ भी बना ही रहता है । अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में विद्यमान हर वस्तु में प्रतिबिम्ब ससम्मुखता के आधार पर ही होता है या रहता ही है। इसे स्वाभाविक रूप में हर व्यक्ति अपने ही शक्ति, कल्पना और तर्क प्रयोग परीक्षण के आधार पर प्रमाणित कर सकता है । प्रतिबिम्ब की संप्राप्ति के लिये किसी मानव को कुछ भी करना नहीं है । ससम्मुखता में स्थित हर वस्तु का प्रतिबिम्ब रहता ही है । इसी क्रम में हर व्यक्ति की आँखों में, व्यापक रूप में वर्तमान सत्ता में ही हर वस्तु डूबा, घिरा हुआ दिखाई पड़ता है । इसी के साथ-साथ और एक नित्य प्रमाण समझ में आता है सत्ता हर परस्परता में पारदर्शी है क्योंकि हर ससम्मुखता में किसी न किसी सीमित वस्तुओं (इकाईयों) को पाया जाता है। सीमित वस्तुओं का ही प्रतिबिम्ब होता है । सीमित वस्तुओं की परस्परता के मध्य व्यापक रूप में वर्तमान सत्ता दिखाई पड़ती है । यह स्थिति सर्वत्र, सर्वकाल में सभी

मानव के नजरों में आती है । इस तथ्य के आधार पर सत्ता पारदर्शी होना, देखने को मिलता है । क्योंकि सत्तामयता हर परस्परता के मध्य में होता ही है तभी परस्परता में प्रतिबिम्बन होना प्रमाणित होता है । ऐसे पारदर्शी सत्ता में घिरा, डूबा होने का महिमा के साथ-साथ हर सीमित वस्तुएँ ऊर्जा सम्पन्न रहना, उन-उन की क्रियाशीलता के आधार पर प्रमाणित होता है । इससे यह भी पता लगता है-सत्ता में ही हर सीमित वस्तुएँ भीगी हुई है । इस प्रकार हर वस्तु अर्थात् हर सीमित वस्तु सत्ता में ही नियंत्रित, क्रियाशील, संरक्षित रहना भी पता लगता है क्योंकि अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है । अस्तु, प्रतिबिम्बन का मूल वस्तु रूप है ही । ऐसे रूपों के परस्परता के मध्य में स्थित साम्य ऊर्जा, सत्ता पारदर्शी होता है ।

आँखों से देखने के क्रम में सारे सानूकुलताएँ अस्तित्व सहज रूप में समीचीन रहते हुए आकार, आयतन का आंशिक भाग आँखों के सम्मुख प्रतिबिम्बित होना स्पष्ट हो चुकी है । आँखों पर प्रतिबिम्बित आकार से अधिक आयतन, आकार और आयतन से अधिक घन रहता ही है । इस विधि से जो हम आँखों से देखते है उसकी सम्पूर्णता आँखों में आती नहीं है । यह रूप के सम्बन्ध में जो तीन आयाम बतायी गई है उसका प्रतिबिंबन और आँखों की क्षमता के संबंध में मूल्यांकित हुई । हर रूप के साथ गुण, स्वभाव, धर्म अविभाज्य रहना स्पष्ट किया जा चुका है । यह भी साथ-साथ हर व्यक्ति में किसी न किसी अंश में गुण, स्वभाव, धर्म को समझने की आवश्यकता-अरमान रहता है । इस विधि से यह स्पष्ट हो गया जितना मानव

समझ सकता है वह आँखों में आता नहीं । हर वस्तु आँखों पर होने वाले प्रतिबिम्बन से अधिक है । यही कल्पनाशीलता, तर्क, प्रयोग, अध्ययन और अनुभव का मुद्दा है । अब यह बात सुस्पष्ट हो गई कि देखने का परिभाषा, आशय और सार्थकता समझना ही है, समझा हुआ को समझाना ही है । हर समझ अनुभव की साक्षी में ही स्वीकृत होता है । हर समझ अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित हो जाता है। समझने का जो महत्वपूर्ण पात्रता है और अनुभव योग्य क्षमता सम्पन्नता ही है, इन दोनों महत्वपूर्ण क्रिया के आधार पर अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित होने के आधार पर दृष्टा पद प्रतिष्ठा हर व्यक्ति में, से, के लिए जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना नित्य समीचीन है ।

मानव के सर्वेक्षण से यह भी पता लगता है कि जीवन क्रिया होते हुए भी कल्पना, विचार, इच्छाओं से तृप्ति पाना संभव नहीं होता है । इन तीनों का सम्मिलित योजना-कार्य योजनाओं को कितने भी विधाओं में प्रयोग किया, इससे किसी एक या एक से अधिक मानव को जीवनापेक्षा व मानवापेक्षा सहज उपलब्धियाँ होना साक्षित नहीं हो पायी । आशा, विचार, इच्छाओं के संयुक्त योजनाओं को मानव में से कोई-कोई विविध आयामों में प्रयोग किया । प्रधानत: युद्ध विधा में, शासन विधा में, व्यापार विधा, शिक्षा विधा में प्रयोग किया गया मानव सहज अपेक्षा द्वय इन सभी कृत्यों से प्रमाणित नहीं हो पायी । मानव इतिहास दस्तावेजों के रूप में जो कुछ भी रखा है, वह सब इसका गवाही है । अतएव 'अनुभवात्मक

अध्यात्मवाद' इस आशय की पुष्टि अध्ययन सामान्य योजनाओं का अवधारणा मानव परंपरा में प्रस्थापित करने के लिये प्रस्तुत हुआ है । यह दृष्टा पद की ही महिमा है । इसकी गवाही यही है मानव परंपरा में ही विगत की समीक्षा, वर्तमान में व्यवस्था, भविष्य में, से, के लिये व्यवस्थावादी कार्य-योजना मानव परंपरा को सफल बनाने का सुदृढ़ एवं सर्व मानव स्वीकार्य योग्य प्रस्ताव है । सह-अस्तित्व में अनुभव के आधार पर ही यह सम्पूर्ण प्रस्तुति है ।

वर्णित ऐतिहासिक विफलताएँ अग्रिम अनुसंधान के लिये आधार होना स्वाभाविक है। इस क्रम में इस तथ्य को अनुभव किया जा चुका है कि आँखों से अधिक कल्पनाशीलताएँ हर मानव में विद्यमान है । गणित भी कल्पनाशीलता का ही प्रकाशन है । संख्या के रूप में हर घटना या रूप और गुणों को बताने के लिये प्रयत्न हुआ । गुण ही गति के रूप में होना देखा गया है । गणितीय क्रियाकलाप भी मानव भाषा में गण्य होना पाया जाता है । सर्व मानव में गणना कार्य प्रकट होते ही आया है । ऐसे गणना कार्य को विधिवत् प्रयोग करने के आधार पर रूप सम्बन्धी तीनों आयाम आकार, आयतन, घन को समझने-समझाने का कार्य सम्पन्न होता है । इसी के साथ-साथ गति सम्बन्धी संप्रेषणा भी गणना विधि से लाने का प्रयास हुआ। मध्यस्थ गति गणितीय भाषा में संप्रेषित नहीं हो पायी है। सम-विषमात्मक गतियों को दूरी बढ़ने-दूरी घटने, दबाव और प्रवाह बढ़ने-घटने के साथ परिणामों का आंकलन सहित अध्ययन करने का प्रयास विविध प्रकार से किया गया है । ये

दोनों सम-विषम गतियाँ आवेश के रूप में ही गण्य होते हैं जबकि हर वस्तु, हर इकाई, उसके मूल में जो परमाणु है वह अपने स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही उनके त्व सहित व्यवस्था होना पाया जाता है । जो कुछ भी अस्तित्व में त्व सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है वह सब मध्यस्थ गति के अनुरूप ही कार्यरत होना देखा गया । मानव में इसका कार्य रूप, कार्य प्रतिष्ठा जागृति मूलक विधि से ही स्पष्ट होना देखा गया है। इसका प्रमाण न्याय, धर्म, सत्य मूलक अभिव्यक्ति के रूप में ही प्रमाणित होता है । इनमें से कम से कम न्यायपूर्ण अभिव्यक्ति क्रम में ही मानव त्व को प्रकाशित कर पाता है । न्याय साक्षात्कार के उपरान्त स्वाभाविक रूप में धर्म और सत्य में जागृत होता है अर्थात् प्रमाणित होता है । इसलिये मानवीयतापूर्ण मानव चेतना पूर्ण पद में संक्रमित होना अति अनिवार्य है । इसी आवश्यकता के आधार पर शिक्षा में प्रावधानित वस्तु जागृति पूर्ण रहना आवश्यक है। यही परंपरा का परिवर्तन कार्य है । शिक्षापूर्वक ही सर्वमानव के जागृत होने का मार्ग प्रशस्त होता है। अतएव मध्यस्थ गति मानव का स्वभाव गति के रूप में मानवीयता को प्रमाणित करने के रूप में ही संभव होता है । फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रामाणिकता और स्वायत्तता के साथ दिव्य मानव प्रतिष्ठा शिक्षा-कार्य और प्रमाण वैभवित रहता है । यही मानव परंपरा का सर्वांग सुन्दर वैभव है । इसे अनुभव मूलक विधि से ही सम्पन्न करना संभव है । यही दृष्टा पद परम्परा का भी प्रमाण है ।

स्वभाव गति सदा-सदा 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में

दृष्टव्य है । स्वभाव गति का तात्पर्य इस बात को भी इंगित करता है कि स्वभाव-धर्म के अनुरूप गति । यही हरेक इकाई में अन्तर सामरस्यता का भी द्योतक है । फलस्वरूप परस्परता में व्यवस्था प्रमाणित होना सहज है । मानव का स्वभाव मानवीयता और उसमें परम श्रेष्ठता के आधार पर धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा पूर्ण कार्य-व्यवहार, विचार व अनुभव ही है । यही प्रतिष्ठा मुख्य रूप से दृष्टा पद का द्योतक है । दृष्टा पद परिपूर्ण समझदारी का ही अभिव्यक्ति संप्रेषणा व प्रकाशन है। ऐसी समझदारी का स्वरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान है । यही दृष्टा पद जागृति का सम्पूर्ण अधिकार स्वरूप भी है । इस प्रकार सम्पूर्ण समझदारी का अधिकार सम्पन्न दृष्टा होना देखा गया है । इसी समझदारी में से जीवन ज्ञान के साथ निष्ठा, अस्तित्व दर्शन के साथ निश्चयता और मानवीयतापूर्ण आचरण की अभिव्यक्ति में दृढ़ता पूर्वक व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होना सहज है । इस विधि से हर मानव दृष्टा, कर्ता और भोक्ता होना पाया जाता है ।

आवर्तनशीलता जीवन सहज अक्षय शक्ति-अक्षय बल का ही महिमा है । इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक जितनी भी परंपराएं स्थापित हुई-पनपी है जिनको हम आस्थावादी और विज्ञान परंपरा कह सकते है । उक्त दोनों से जो कुछ भी कर पाये हैं वह सब कल्पनाशीलता-कर्मस्वतंत्रता चित्रण, स्मरण और भाषाओं के संयोग से व्यक्त हुआ है । इस दशक तक इस धरती पर कहीं भी अनुभव मूलक परंपरा स्थापित नहीं हो पायी

है । उसके योग्य विश्व दृष्टिकोण ही उदय नहीं हुआ । अनुभवमूलक प्रणाली की आवश्यकता तब आवश्यक हो गया जब मानव जाति धरती का सर्वाधिक शोषण किया । जैसे वन खनिज अनानुपाती विधि से शोषण किया । जिसके प्रौद्योगिकी परिणामों में प्रदूषण की मात्रा बढ़ती गई । कुछ मेधावियों को इसकी विभीषीकाएँ कल्पना में आने लगी तब अनुभवमूलक ज्ञान दर्शन आचरण की आवश्यकता निर्मित हुई । इसी आवश्यकता के आधार पर अनुसंधान सम्पन्न हुआ । इसमें मुख्य मुद्दा अनुभवों को संप्रेषित करना हुआ । **इसका सिद्धान्त यही है मानव में, से, के लिये भाषा से कल्पना, कल्पना से चिन्तन, चिन्तन से अनुभव, अनुभव से प्रमाण विस्तार और स्पष्ट अभिव्यक्ति होना देखा गया ।** इससे स्पष्ट हो जाता है कि भाषा कल्पना चित्रण यह दृष्टा पद का आधार नहीं हो पाई । जबकि अभी तक जो भी अभिव्यक्तियाँ हुई वह इतने तक ही हुई । यह आशा, विचार, इच्छा बन्धन का प्रकारान्तर से किया गया प्रकाशन ही है । यह सब भ्रमित विधि होने के कारण जिसके गवाही के रूप में युद्ध ही प्रधान विकास का आधार मानने के फलस्वरूप भ्रम का साक्ष्य सुस्पष्ट हो जाता है । शांतिवादी कल्पनाएँ जितने भी हो पायी, व्यक्तिवादी होने के कारण परिवार, समाज और व्यवस्था का आधार नहीं हो पाया । भोगवादी परिकल्पना भी व्यक्तिवादी हुई। यह सर्वविदित है विरक्तिवाद भी एकान्तवाद स्वान्तः सुख रूप में है । इन सबका सार-संक्षेप संघर्ष ही पीढ़ी से पीढ़ी को हाथ लगी । इस दशक में सर्वाधिक लोग संघर्षरत भी हुए। ऐसे

अनेकानेक संगठन पूरे धरती पर तैयार हो चुके हैं । कहीं भी राजगद्दी पर कोई बैठा है तो उसका विद्रोही संगठन भी रहा । यह सब इसी की गवाही में है कि हम सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज विधि को पाये नहीं है पाने की इच्छा आंशिक रूप में बना ही रहा । तीसरा मानवापेछा और जीवनापेछा किसी परंपरा में सार्थक नहीं हो पायी इसी कारणवश अनुभवमूलक शिक्षा-संस्कार, व्यवस्था और संविधान को सुस्पष्ट करना एक नियति सहज आवश्यकता रही है ।

भ्रमवश शरीर ही समझने वाला वस्तु है ऐसा कल्पना करते हुए शरीर रचना के आधार पर विकास और जागृति को केन्द्रित करने का कोशिश किया किन्तु मानव का विश्लेषण न हो पाने से अभी भी इसी दिशा में अनुसंधान और उसके प्रोत्साहन को जारी रखा गया है । जबकि शरीर को जीवन ही जीवन्त बनाए रखते हुए समृद्धिपूर्ण मेधस सम्पन्न मानव शरीर के माध्यम से मानव परंपरा में जीवन ही अपने जागृति को प्रमाणित करने के क्रम में सदा-सदा प्रयास करते ही रहा । परम्पराएँ भ्रमित रहने के कारण मानव सहज जागृति की इच्छाएँ हर शरीर यात्रा में दिशा विहीनता और मार्ग विहीन होने का कुण्ठा सदा बाधा करता ही रहा । इस क्रम में ही जागृति के लिये आवश्यकीय अनुसंधान और उसे परम्परा में स्थापित करना आवश्यक हो गया ।

जीवन का स्वरूप, कार्य और शरीर के साथ कार्य विधि इस मुद्दे पर विश्लेषण निष्कर्ष निकालने के विधि को प्रस्तुत किया जा चुका है । इसमें मूलतः विकास के मंजिल में जीवन

ही जागृति क्रम में कल्पनाशीलता, विश्लेषण कार्य, चित्रण, चिन्तन सहज मौलिकता, बोध सम्पदा और अनुभव सहज वैभव को हर व्यक्ति अनुभव करने की आवश्यकता बनती है । जीवन में उक्त सभी क्रियाएँ कम से कम कल्पनाशीलता उससे अधिक विश्लेषण से मानव परंपराएँ व्यंजित होता देखा गया है । ऐसे विश्लेषणों को अधिकतर चित्रित करने का कोशिश किया गया है। जबकि चिन्तन से ही मानव अपेक्षा और जीवन अपेक्षा स्पष्ट हुआ। बोध और अनुभव पूर्णतया जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को सार्थक बनाने के कार्यक्रम से सम्पन्न हो जाता है। इसे सार्थक बनाने के क्रम में ही सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज रचना विधि-यह दोनों सुस्पष्ट हो जाता है। इसलिये मानव परंपरा में अनुभवमूलक कार्य परंपरा स्थापित होना सहज है क्योंकि मानवापेक्षा की कसौटी में ही जीवन अपेक्षा की सफलता प्रमाणित होना है । इस प्रकार अनुभवमूलक ज्ञान, विज्ञान, विवेक, विचार, विश्लेषण व्यवहार में प्रमाणित होने की पद्धति प्रणालियाँ परम्परा में सार्थक होना, चरितार्थ होना समीचीन है ।

अनुभवमूलक ज्ञान को जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान के रूप में विज्ञान को अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व का विश्लेषण विधि से, विचारों को अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन के रूप में, विवेक को यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता के आधार पर विवेचना करने के आधार पर जान लिया, मान लिया, पहचान लिया गया है । इसे निर्वाह करने के क्रम में अभिव्यक्ति संप्रेषणा कार्य भी है ।

संप्रेषणा क्रम में ही मानवीयतापूर्ण आचरण, परिवार और परिवार व्यवस्था में भागीदारी का रूप होता है । इसी प्रकार, विश्व परिवार व्यवस्था में भागीदारी समीचीन रहती ही है । यह जागृत मानव का विशाल और विशालतम स्थिति में प्रमाणित होने का रूप है । मानवीयतापूर्ण आचरण, मानवीयतापूर्ण व्यवस्था में भागीदारी अविभाज्य कार्य है इसका सामान्य अपेक्षा हर मानव में देखने को मिलता ही है । इसे परिष्कृत और समाधानित रूप देना ही जागृत परंपरा है । इस प्रकार अभी तक इस धरती पर विभिन्न समुदायों के द्वारा भोगा गया भ्रमित परंपरा का कारण मानव का ही भ्रम होना स्पष्ट हो चुका है । इसी के साथ यह मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा सहज लक्ष्य पूर्ति में, से, के लिये जागृति परंपरा की सम्भावना और उसकी समीचीनता भी स्पष्ट हुई ।

जागृति कार्य परम्परा में अनुभवमूलक विधि से ही प्रामाणिकता का बोध-संकल्प, प्रामाणिकता का चिंतन-चित्रण न्याय, धर्म, सत्य सहज तुलन, विश्लेषण, मानवीय मूल्यों का आस्वादन और चयन सहित जीवन कार्य प्रणाली और शैली स्थापित होना ही जागृति परंपरा का, जागृत मानव का प्रमाण है। यह भी सर्वविदित है, जागृत मानव ही जागृत परंपरा का संस्थापक, धारक-वाहक होना सहज है । इस प्रकार जागृत शैली का तात्पर्य अभिव्यक्ति, संप्रेषणों, कार्य व्यवहार के रूप में स्पष्ट होना ही जागृत परंपरा के नाम से इंगित आशय है।

शरीर के किसी अंग-अवयव में न्याय, समाधान, सत्य की प्रतीक्षा, अपेक्षा शरीर सहज ज्ञानेन्द्रिय कार्यों कर्मेन्द्रिय कार्यों

में दिखाई नहीं पड़ती । जैसा-हाथ को न्याय की अपेक्षा, आँख, कान, जीभ और नाक में न्याय, समाधान, सत्य की अपेक्षा चिन्हित रूप में समझने का कितना भी कोशिश करें निषेध ही निकलता है । ज्ञानेन्द्रियों में जब ज्ञान का अपेक्षा स्वरूप रूपी न्याय, समाधान, सत्य कान, आँख, नाक व्यंजित नहीं कर पाता है अपितु, इनमें उन-उन ज्ञानेन्द्रियों के लिये अनुकूल वस्तुओं का संयोग (सन्निकर्ष) अच्छा लगना होता है । यह अच्छा लगा किसको ऐसा पूछा जाए हाथ, नाक, कान आँखों में अच्छाइयों का कोई गवाही स्थित नहीं रहता है । यह सब जब स्पष्ट हो जाता है तब पुनः यह प्रश्न हो सकता है शरीर की आवश्यकता ही क्यों ? जिसका अक्षुण्ण उत्तर यही है कि मानव परंपरा में जीवन जागृति और उसकी प्रामाणिकता को प्रमाणित करना है । ऐसी महिमा सम्पन्न उद्देश्य पूर्ति क्रम में मानव अपेक्षा, जीवन अपेक्षा सार्थक हो जाता है । मानव अपेक्षाओं का संपूर्ति, परिपूर्ति, आपूर्ति क्रम में न्याय और नियम, समाधान प्रमाणित हो जाता है । वह भी चिन्हित रूप में प्रमाणित हो जाता है । हर जीवन का ही कार्य वैभव और फलन है । इसका सिद्धान्त यही है कि अधिक शक्ति और बल, कम शक्ति और बल सम्पन्न माध्यम के द्वारा प्रकाशित होता है । जीवन अक्षय शक्ति, अक्षय बल सम्पन्न इकाई है । प्राण कोषाओं का शक्ति और बल उसके रचना के आधार पर सीमित रहता ही है। क्योंकि हर रचना का विरचना क्रम जुड़ा ही रहता है । इस आधार पर इस धरती पर जितने भी प्राण कोशाओं की रचना है शीघ्र परिवर्ती है, भौतिक रचनाएँ दीर्घ परिवर्ती है ।

इसीलिये मानव शरीर प्राण कोशाओं से रचित रहने के लिये इसमें परिवर्ती कार्य घटना समीचीन रहता ही है । इस प्रकार शरीर बल और शक्ति अपने व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होते हुए सीमित और जड़ कोटि में गण्य होना पाया जाता है । रचना सहज श्रेष्ठता मेधस रचना और मेधस तंत्रणा ही प्रधान है । हृदयतंत्र मेधस तंत्र यही मुख्य तंत्र है । इस प्रकार शरीर में मेधस और मेधस तंत्र हृदय और हृदय तंत्र सह-अस्तित्व में शरीर व्यवस्था कार्य सम्पन्न होना मानव शरीर के लिये रस, रसायन स्रोत, पाचन परिणाम, अनावश्यकता का विसर्जन, ये सब तंत्रणाएँ ऊपर कहे गये दोनों तंत्रों के आधार पर कार्यरत रहना पाया जाता है। इसी को शरीर व्यवस्था का नाम दिया जाता है । शरीर जीवन्त न रहने की स्थिति में स्वतंत्र रूप में आहार आदि क्रियाओं का सम्पादन नहीं हो पाता है और ज्ञानेन्द्रियों का क्रियाकलाप शून्य हो जाता है । ऐसे बहुत सारे उदाहरणों को मानव ने देखा है । इससे यह स्पष्ट होता है-शरीर को जीवन्त बनाए रखने का मूल तत्व जीवन ही है । जीवन ज्ञान के साथ-साथ ही यह तथ्य स्वीकार हो पाता है । तब तक भ्रमित रहना भावी है ही । भ्रम का सबसे चिन्हित गवाही यही है-शरीर को जीवन समझना। शरीर को जीवन समझने के मूल में जीवन सहज कल्पना ही आधार है । यह भ्रमित रहने के कारण ऐसा मानना होता है । फलस्वरूप जीवन अपेक्षा के विपरीत, मानव अपेक्षा के विपरीत घटित होता है यही कारण रहा है जागृति विधि को मानव परंपरा को अपनाने के लिये आवश्यकता बलवती हुई ।

दृष्टा पद का सर्वप्रथम उपलब्धि शरीर का दृष्टा होना ही है । शरीर का दृष्टा होने के आधार पर ही ऊपर इंगित किये गये तथ्य स्पष्ट हुआ है । उक्त तथ्यों को हृदयंगम करने से जागृति की संभावना समीचीन होती ही है । इसी आशय से यह अभिव्यक्ति है । दृष्टा होने का सतत फलन यही है हर स्थिति-गति, योग-संयोग, फल-परिणाम परिपाक और प्रवृत्तियों का मूल्यांकन होना सहज हो जाता है । जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान सम्पन्न मानव मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान का मूल्यांकन, अस्तित्व सहज प्रयोजन का मूल्यांकन करता है । यह महिमा अस्तित्व कैसा है स्पष्टतया समझने के उपरान्त सफल हो जाता है और सफल होना देखा गया है ।

अस्तित्व सम्पूर्ण सत्ता में संपृक्त सह-अस्तित्व होने के रूप में अपने वैभव को चारों अवस्था में प्रकाशित किया है । यही वर्तमान का मतलब है। जीवन का स्वरूप, स्वीकृति और उसका अनुभव प्रतिष्ठा ही जीवन ज्ञान का तात्पर्य है । अस्तित्व सहज स्वरूप जैसा है इसका स्वीकृति और उसमें अनुभव स्वयं में से स्फूर्त प्रवृत्त सह-अस्तित्व दर्शन का तात्पर्य है । जीवन ज्ञान सह-अस्तित्व सहज के प्रकाश में ही अस्तित्व दर्शन सबको सुलभ होता है । इसलिये जीवन ज्ञान पर बल दिया जाता है । विद्या का तात्पर्य ही ज्ञान है । यहाँ इस तथ्य का भी स्मरण रहना आवश्यक है-जिन बातों को विद्या अथवा ज्ञान आदिकाल से कहते आ रहे हैं वह कल्पना क्षेत्र में ही सीमित रह गया । इसका साक्ष्य यही है जिसको ज्ञान, आत्मा, देवता कहते हुए सम्पूर्ण साधना, उपासना, अर्चना का आधार मान

लिया गया है । वह सब मन, बुद्धि का गोचर नहीं है । मन, बुद्धि को जड़ क्रिया मानते हुए ज्ञान चेतना इनके पहुँच से बाहर है ऐसे ही उद्‌बोधन करते आये । इसके बावजूद बहुत सारे किताब इन्हीं मुद्‌दे अथवा नाम पर लिखा गया है । उल्लेखनीय तथ्य यही है कि जीवन ज्ञान - जीवन में, से, के लिये ही होता है । सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान, सह-अस्तित्व में, से, के लिये ही होता है । इन दोनों विधाओं का दृष्टा जीवन ही होना पाया जाता है फलस्वरूप मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधि से दृष्टा पद की महिमा स्पष्ट है । इस विधि से जीवन ज्ञान अर्थात् देखने समझने वाला, दिखने वाला भी जीवन सहित होना स्पष्ट हुआ । देखने वाला जीवन, दिखने वाला सह-अस्तित्व यह अस्तित्व दर्शन के रूप में स्पष्ट हुआ। जीवन सह-अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान होने के आधार पर जीवन का अस्तित्व भी सहज होना पाया जाता है ।

प्रमाणों के मुद्‌दों पर अध्यात्मवाद सर्वप्रथम शब्द को प्रमाण मान लिया गया । तदनन्तर, पुनर्विचार पूर्वक आप्त वाक्यों को प्रमाण माना गया । तीसरा प्रत्यक्ष, आगम, अनुमान को प्रमाण माना गया । ये सभी अर्थात् तीनों प्रकार के प्रमाणों के आधार पर अध्ययनगम्य होने वाले तथ्य मानव परंपरा में शामिल नहीं हो पाये । इसी घटनावश इसकी भी समीक्षा यही हो पाती है यह सब कल्पना का उपज है । शब्द को प्रमाण समझ कर कोई यथार्थ वस्तु लाभ होता नहीं । कोई शब्द यथार्थ वस्तु का नाम हो सकता है । वस्तु को पहचानने के उपरान्त ही नाम का प्रयोग सार्थक होना पाया गया है । इसी

विधि से शब्द प्रमाण का आशय निरर्थक होता है । **''आप्त वाक्यं प्रामाण्यम् ।''** आप्त वाक्यों के अनुसार कोई सच्चाई निर्देशित होता हो उसे मान लेने में कोई विपदा नहीं है । जबकि चार महावाक्य के कौन से चार महावाक्य रूप में जो कुछ भी नाम और शब्द के रूप में सुनने में मिलता है उससे इंगित वस्तु अभी तक अध्ययन परंपरा में आया नहीं है । आप्त वाक्य जब अध्ययनगम्य नहीं है, मान्यता के आधार पर ही है, तर्क तात्विकता की कड़ी है, अध्ययन तर्क संगत होना आवश्यक है। ऐसे में आप्त पुरूषों को भी कैसे पहचाना जाय ? यह प्रश्न चिन्हाधीन रह गया । कोई भी सामान्य व्यक्ति भय, प्रलोभन और संघर्ष से त्रस्त होकर किसी को आप्त पुरूष मान लेते हैं तब उन्हीं के साथ यह दायित्व स्थापित हो जाता है आपने कैसे मान लिया। इसके उत्तर में बहुत सारे लोग मानते रहे, अथवा मैं अपने ही खुशी से मान लिया हूँ-यही सकारात्मक उत्तर मिलता है । ऐसा बिना जाने ही मान लेने के साथ ही सम्पूर्ण प्रकार से कल्याण होने का आश्वासन भी देते हैं साथ ही सारे मनोरथ या मनोकामना पूरा होने का आश्वासन देते हैं । ऐसा आश्वासन स्थली, आश्वासन देने वाला व्यक्ति के संयोग से आस्थावादी माहौल (भीड़) का होना देखा गया है । ऐसे भीड़ से कोई एक अथवा सम्पूर्ण भीड़ के द्वारा जीवन अपेक्षा, मानवापेक्षा फलीभूत होता हुआ इस सदी के अंतिम दशक तक देखने को नहीं मिला ।

जहाँ तक प्रत्यक्ष की बात है ज्ञानेन्द्रिय गोचर अथवा इन्द्रिय सन्निकर्ष के नाम से इंगित कराया गया है । आँखों से

अधिक कल्पना में, कल्पना से अधिक समझ में और समझ से अधिक अनुभव में आता है । इन तथ्यों को पहले स्पष्ट कर चुके हैं । अतएव आँखों में सम्पूर्ण वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं आता है, समझ में आता है । इस विधि से प्रत्यक्ष कोई प्रमाण होता ही नहीं है। अनुमान पूर्णतया कल्पना क्षेत्र है । अनुमान में नहीं आया हो, भविष्य में आने वाला हो ऐसे घटना को **आगम** भी नाम दिया गया है । अनुमान ही जब कल्पना हो गई-आगम भी कल्पना ही होगा । काल्पनिक निर्णय, प्रवृत्तियाँ, प्रयास किसी गम्य स्थली को प्रमाणित नहीं करता । इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुमान आगम का समीक्षा स्पष्ट हुई है । इसी के साथ आप्त वाक्य और शब्द प्रमाण का भी समीक्षा प्रस्तुत हो चुकी है । जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण विधि से अनुभव, व्यवहार और प्रयोग ही प्रमाणों के रूप में होना देखा गया है । देखने का तात्पर्य समझने से है । ये तीनों हर मानव में घटित होने वाली घटनाएं है । मानवीयतापूर्ण विधि से मानव परंपरा अभिभूत होने की स्थिति में, (अभिभूत होने का तात्पर्य ओत-प्रोत होने से है) प्रत्येक मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक अनुभव को सत्यापित करना बनता है । मानवीयतापूर्ण व्यवहार, व्यवस्था में भागीदारी, आचरण का संयुक्त स्वरूप ही है । इसमें मानव का विचार शैली, अनुभव बल समाहित रहता ही है । प्रयोग कार्यों में जो कुछ भी किया जाता है विचार शैली और व्यवहार, प्रयोजन का सूत्र समाहित रहना पाया जाता है । इस सार्थक विधियों से मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा में सार्थक होना पाया जाता है । अतएव यह स्पष्ट हो गया है कि

मानव परंपरा में प्रमाण और प्रमाणीकरण का मूल स्रोत अनुभव ही है । यही विचार शैली, व्यवहार कार्य और प्रयोग कार्यों में प्रमाणित होता है । इसलिये अनुभव प्रमाण ही परम प्रमाण है, यह स्पष्ट हो जाता है । इसीलिये मानव परंपरा अनुभवमूलक विधि से ही सार्थक होना स्पष्ट हो चुकी है । अनुभव सहज अभिव्यक्ति ही दृष्टा पद एवम् प्रमाण परंपरा का प्रमाण है ।

जागृत जीवन व जागृतिपूर्ण जीवन ही अपने कार्य व्यवहार, विचार और प्रयोगों को प्रमाणित करना ही जीवन दृष्टा पद प्रतिष्ठा मानव जागृति सहजता में होने का प्रमाण है । जीवन सहज अनुभव बल के आधार पर जीवन के सम्पूर्ण क्रियाएं अभिभूत होने के फलस्वरूप यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता का स्वीकृति होना व उसकी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन सहज होना पाया जाता है । सम्पूर्ण सत्य स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में ज्ञानगम्य विधि से दृश्यमान होना पाया गया है । क्रम से सह-अस्तित्व में ही दिशा, काल, देश, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अध्ययन चेतना विकास मूल्य शिक्षा विधि से बोध अनुभव ही है । यह हर जागृत मानव के समझ में होता ही है । मानवीयता पूर्ण व्यवहार सहज विधि से अर्थात् मानवीयतापूर्ण आचरण सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने से इसी स्थिति में, इसी गति में हर व्यक्ति दृष्टापद अनुभव समाधान का प्रमाण प्रस्तुत करना सुगम, सार्थक होना समीचीन रहता ही है । इन्हीं तथ्यों के आधार पर मानव दृष्टा होना सह-अस्तित्व में अनुभव है, प्रमाणित होता है ।

पूर्वावर्ती विचार में रहस्यमयी ईश्वर केन्द्रित विचार के अनुसार ईश्वर ही कर्ता-भोक्ता होना भाषा के रूप में बताते रहे। इसी के आधार पर ब्रह्म, आत्मा या ईश्वर सबका दृष्टा होना बताने भरपूर प्रयास किये । यह मुद्दा रहस्य होने के आधार पर अभी तक वाद-विवाद में उलझा ही हुआ है । जबकि सह-अस्तित्ववाद जीवन ही मानव परंपरा में दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहित कर्ता व भोक्ता के रूप में सफल होना देखा गया है । जागृति का प्रमाण केवल मानव परंपरा में ही होता है । जितने भी विधा से सह-अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण संगत विधि से किया गया तर्क से, विश्लेषण से, किसी भी दो ध्रुवों के बीच त्व सहित व्यवस्था सहज कार्य प्रणाली से, जीवनापेक्षा अर्थात् जीवन मूल्य और मानवापेक्षा अर्थात् मानव सहज लक्ष्य के आधार पर और सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज क्रम को जानने-मानने-पहचानने, निर्वाह करने के आशयों से अवधारणाएँ सहज रूप में ही जीवन में स्वीकार हो जाता है । इस क्रम में इस तथ्य का उद्घाटन चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार विधि से होता है जीवन ही सार्थकता के लिये जागृत होता है । सार्थकता में जीना ही भोगना है । सार्थकता के लिये ही जागृतिपूर्ण विधि से सभी कार्य व्यवहार करता है । जागृति ही दृष्टा पद सहज प्रमाण है । करना ही कर्ता पद है और जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को भूरि-भूरि विधि से जीना ही भोक्ता पद है । शरीर केवल करने के क्रम में एक साधन के रूप में उपयोगी होना देखा गया है । अध्ययन क्रम में भी सार्थक माध्यम होना देखा गया ।

अध्ययन-अध्यापन करना भी कर्त्ता के संज्ञा में ही आता है । दृष्टा पद में पूर्णतया जीवन ही जागृति के स्वरूप में प्रमाणित होता है । यह प्रमाण जान लिया हूँ, मान लिया हूँ, प्रमाणित कर सकता हूँ के रूप में स्थिति के रूप में अध्ययन का प्रयोजन होता है । अर्थात् हर व्यक्ति में जागृति स्थिति में होता है, भोगने का जहाँ तक मुद्दा है, मानवापेक्षा सहज समाधान समृद्धि को भोगते समय में सम्पूर्ण भौतिक-रासायनिक वस्तुओं का शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति के अर्थ में अर्पित, समर्पित कर समृद्धि को स्वीकार लेता है । जहाँ तक समाधान, अभय और सह-अस्तित्व में जीवन ही अनुभव करना देखा गया है । जीवनापेक्षा संबंधी सुख, शांति, संतोष आनन्द का भोक्ता केवल जीवन ही होना देखा गया है ।

ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता : के रूप में भी चर्चाएँ प्रचलित रही है । इस संदर्भ में भी कोई अंतिम निष्कर्ष अध्ययन गम्य होना सम्भव नहीं हुआ था। अब अस्तित्वमूलक, मानव केन्द्रित चिन्तन, विचार अध्ययन और प्रमाण त्रय के अनुसार ज्ञान जीवन कार्यकलाप ही है। इसे अन्य भाषा से जागृतिपूर्ण जीवन कार्य कलाप ही ज्ञान है । सह-अस्तित्व ज्ञेय है अर्थात् जानने योग्य वस्तु है । सह-अस्तित्व में जीवन अविभाज्य रूप में वर्तमान रहता है । जीवन नित्य होना सुस्पष्ट हो चुकी है । इसलिये जीवन जागृति के अनन्तर जागृति की निरंतरता स्वभाविक है । इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है **जागृत जीवन ही ज्ञाता है । जीवन सहित सम्पूर्ण अस्तित्व ही ज्ञेय है और जागृत जीवन का परावर्तन**

क्रियाकलाप ही ज्ञान है ।

सह-अस्तित्व ही अनुभव करने योग्य समग्र वस्तु है यह स्पष्ट हो चुकी है । अस्तित्व स्वयं सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में स्पष्ट है । अस्तित्व में अनुभूत होने की स्थिति में सत्तामयता ही व्यापक होने के कारण अनुभव की वस्तु बनी ही रहती है । इसी वस्तु में सम्पूर्ण इकाईयाँ दृश्यमान रहते ही हैं। परम सत्य सहजता सह-अस्तित्व ही होना, अस्तित्व में जब अनुभूत होना उसी समय से सत्तामयता में अभिभूत होना स्वाभाविक है । अभिभूत होने का तात्पर्य सत्ता पारगामी व्यापक पारदर्शी होना अनुभव में आता है । अनुभव करने वाला वस्तु जीवन ही होता है । इस विधि से सत्तामयता को ईश्वर ज्ञान परमात्मा के नाम से भी इंगित कराया है । यही सह-अस्तित्व में अनुभूत होने का तात्पर्य है अर्थात् सत्तामयता पारगामी होने का अनुभव ही प्रधान तथ्य है । अस्तित्व में अनुभव इस तथ्य का पुष्टि होना स्वाभाविक है । सत्ता में प्रकृति अविभाज्य है । सत्ता विहीन स्थली होता ही नहीं है । सत्ता में प्रकृति नित्य वर्तमान रहता ही है । इस विधि से सत्तामयता का पारगामीयता जड़-चैतन्य प्रकृति ऊर्जा सम्पन्न रहने के आधार पर प्रमाणित हो जाता है । इस विधि से सत्तामयता में ही अविभाज्य रूप डूबे, घिरे हुए व्यवस्था में दिखाई पड़ते हैं । यही परमाणु, अणु, अणु रचित पिण्ड अनेक ग्रह-गोलों के रूप में देखने को मिलता है । यही परमाणु, अणु, अणु रचित रचनायें प्राणावस्था का संसार, जीवावस्था और ज्ञानावस्था का शरीर ही दृष्टव्य है । इन सबका दृष्टा जीवन ही है । सत्ता में अनुभव के उपरान्त ही दृष्टा पद

प्रतिष्ठा निरन्तर होना देखा गया है । इसी अनुभव के अनन्तर सह-अस्तित्व सम्पूर्ण दृश्य, जीवन प्रकाश में समझ में आता है। जीवन प्रकाश का प्रयोग अर्थात् परावर्तन अनुभवमूलक विधि से प्रामाणिकता के रूप में बोध, संकल्प क्रिया सहित मानव परंपरा में परावर्तित होता है । अतएव जागृतिपूर्ण जीवन क्रियाकलाप अनुभवमूलक ज्ञान को सदा-सदा के लिये व्यवहार और प्रयोगों में प्रमाणित कर देता है । यही मानव परंपरा सहज आवश्यकता है ।

अस्तित्व में अनुभव का परावर्तन = प्रामाणिकता = ज्ञान विवेक विज्ञान = (परावर्तन में)

अस्तित्व में अनुभूत (अनुभवपूर्ण) जीवन = ज्ञाता (प्रत्यावर्तन में)

अस्तित्व = ज्ञेय = सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति

अस्तित्व में अनुभव की स्थिति में ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता में एकरूपता सह-अस्तित्व के रूप में होना देखा गया है जो ऊपरवर्णित विधि से स्पष्ट है ।

यह सम्पूर्ण अभिव्यक्तियाँ नियति सहज प्रणाली से ही गुंथी हुई होती है । सह-अस्तित्व सहज सम्पूर्ण क्रियाकलाप, सह-अस्तित्व में पूरकता, उपयोगिता-उदात्तीकरण, रचना-विरचना के रूप में विकास क्रम में दृष्टव्य है । दूसरी धारा विकास, चैतन्य पद जीवन कार्य, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जागृति, जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता ही होना दृष्टव्य है। यह सुस्पष्ट हो गया कि नियति क्रम अपने में विकास क्रम,

विकास, जागृतिक्रम व जागृति ही है। यह सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही वर्तमान है ।

कार्य, कारण, कर्ता : सहज मुद्दे पर भी मानव में चर्चा का विषय रहा है । ऊपर वर्णित दृष्टा, कर्ता, भोक्ता क्रम में कार्य, कारण, कर्ता का स्पष्ट कार्य प्रणाली समझ में आता है । यह मुद्दा रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित विचार और अनिश्चियता मूलक वस्तु केन्द्रित विचार के अनुसार सदा-सदा प्रश्न चिन्ह के चंगुल में ही रहते आये । इसका भी कोई समाधान अध्ययनगम्य नहीं हो पाया था । अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित विचारधारा के अनुसार कार्य कारण का दृष्टा जीवन ही है । सत्ता में संपृक्त प्रकृति रूपी सह-अस्तित्व ही कार्य, कारण के रूप में नित्य वर्तमान है । सह-अस्तित्व ही कार्य का कारण रूप है । सह-अस्तित्व ही कार्य रूप है । क्योंकि सह-अस्तित्व में ही सम्पूर्ण नियति सहज क्रियाकलाप दृष्टव्य होना वर्तमान है । अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही । अस्तित्व ही नित्य स्थिति रूप में सह-अस्तित्व में ही नित्य गति रूप में जड़-चैतन्य प्रकृति होना स्पष्ट है । सह-अस्तित्व ही अस्तित्व सहज सम्पूर्ण क्रियाकलाप का कारण है और सह-अस्तित्व ही क्रियाकलाप है । अस्तित्व में केवल दृष्टा ही कर्ता पद में होना स्पष्ट है और अन्य सभी पद कार्य पद में ही प्रतिष्ठित है । कार्य-कारण-कर्ता में सामरस्यता ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा का सूत्र बनता है । ऐसी प्रतिष्ठा में ही जीवन जागृति का प्रमाण अनुभवमूलक विधि से व्यवहार में ज्ञान प्रमाणित होना पाया जाता है । **अतएव मानव ही कर्त्ता पद में है और सम्पूर्ण अस्तित्व ही कार्य-कारण पद**

में है । कार्य-कारण विधि से ही कर्त्ता पद प्रतिष्ठा ज्ञानावस्था में देखा गया है ।

साधन, साध्य और साधक : का प्राचीन समय से चर्चा और अनुसरण की वस्तु (विषय) मानते हुए चले आता हुआ मानव परंपरा में स्पष्ट रूप में प्रस्तुत है । साधक के रूप में मानव को, साध्य के रूप में मानव व जीवन लक्ष्य को, साध्य और साधक के बीच में दूरी को घटाकर लक्ष्य सामीप्य, सान्निध्य, समरुप्य क्रम में प्रमाणित ही होने के क्रम में प्रयुक्त सभी उपाय साधनों के नाम से जाना जाता है । साधन के रूप में कल्पना किया गया सम्पूर्ण उपाय अनेकानेक उपायों का सम्मिलित स्वरूप में साधक होना देखा गया है । इस विधि में मानव बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक विभिन्न समुदाय परंपराओं में विभिन्न प्रकार के साध्य का नाम प्रचलित किया हुआ देखा गया है । इस प्रकार के साध्य का नाम अनेक होना देखा गया है । अनेक नाम के रूप में प्राप्त साध्य के लिये संतुष्टिदायी वचन प्रणाली जिसको हम प्रार्थना कह सकते हैं । अर्चना प्रणाली जिसको हम पूजा कह सकते हैं, इसे कहके, करके दिखाने का भी प्रक्रियाएँ सम्पन्न हुई है। इसी आधार पर किसी आकार प्रकार की वस्तु को ध्यान करने की बात भी किया जाता है । ऐसी ध्यान में हर साधक में निहित कल्पनाशीलता का ही प्रयोग होना देखा गया है । ऐसी कल्पनाशीलता का प्रयोग बारबार हर दिन किया जाना भी देखा गया है । इसका अंतिम परिणाम और सार्थक परिणाम निर्विचार स्थिति होना जिसे 'समाधि' का भी नाम दिया जाना प्रचलित

है। ऐसे स्थिति को भी अर्थात् निर्विचार स्थिति से भी गुजरा गया। भले प्रकार से गुजरने के उपरान्त समाधि का विश्लेषण कार्यक्रमों से और कार्यक्रम संबंधी प्रवृत्तियों से मुक्ति दिखाई पड़ती है । इसी को स्वान्तः सुख और चरमोपलब्धि के रूप में महिमा गायन किये है । जिसका विश्लेषण की कसौटी में कसने पर पता चला निर्विचार स्थिति के उपरान्त मानव का उपयोग शून्य हो जाता है । फलस्वरूप संयम साधना अपनाकर देखा जिसके फलस्वरूप सह-अस्तित्व ही समझ में आया जिसकी सम्प्रेषणा और अभिव्यक्ति में और लोगों को सह-अस्तित्व अध्ययन गम्य होना प्रमाणित हुई । इसी अभिव्यक्ति क्रम में ''अनुभवात्मक अध्यात्मवाद'' भी मानव सम्मुख प्रस्तुत किया गया ।

जहाँ तक मनोकामनावादी अपेक्षाएँ होती है अधिकांश मानव में उसकी आपूर्ति हो ही जाती है जिसे साधना का फल माना जाता है जबकि ऐसी आपूर्तियाँ बिना साधना किये मानव को भी होते रहते हैं । इसीलिये साधना से मनोकामना पूरी हुई इस बात का चिन्हित प्रमाण नहीं मिल पाता है । यह केवल आस्था सूत्र और घटना काल के आधार पर सम्बोधन लगाने की बात आती है । यह सब प्रकारान्तर से भय-प्रलोभन का ही गठबन्धन है जबकि निर्विचार स्थिति में भय-प्रलोभन का कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ती । अभाव की पीड़ा भी नहीं दिखती । इसीलिये भूत-भविष्य का पीड़ा एवं वर्तमान का विरोध नहीं रहता । इसी को स्वान्तः सुख का नाम देना समीचीन दिखा है। स्वान्तः सुख का प्रमाण समाज के रूप में सर्वसुख के रूप में

परिवर्तित होने का कोई सूत्र नहीं रह जाती है । इसीलिये इस अवस्था में प्रवेश पाने का भी काल निर्णय नहीं हो पाती । यह भी इसके साथ देखा गया है कि सम्पूर्ण ईमानदारी, निष्ठा 'समाधि स्थिति' के प्रति अर्पित रहने के क्रम में ही समाधि स्थली तक मन, बुद्धि, चित्त, वृत्तियाँ प्रवेश कर पाते हैं । फलस्वरूप इनकी कोई गति शेष नहीं है ऐसा बन पाता है जिसका निर्विचार स्थिति नाम दिया गया है । ऐसे घोर साधना के उपरान्त उस मानव का प्रयोजन ही, कार्यक्रम ही प्रसवित न हो ऐसे समाधि या निर्विचार स्थिति को कितने लोग चाह पाते हैं - यह प्रश्न चिन्ह में आता है। इसके उत्तर में विरले लोग ही चाह पाते है । ऐसे सद्ग्रंथों में ही लिखा गया है ।

हम मूलरूप में सर्वसुख विधि को, सर्वशुभ विधि को अनुसंधान करने में तत्पर हुए । मैं अपने को सफल होने की स्वीकार स्थिति में आ गया । यह तभी घटित हुई जब अभ्यास, चिन्तन क्रम में सम्पूर्ण सह-अस्तित्व ही जानने-मानने में आ गई। अस्तित्व में मानव अविभाज्य रूप में होना जानने-मानने में आई । इसी के साथ-साथ इन-इनका निश्चित कार्य क्यों, कैसा का उत्तर निष्पन्न हुई । हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में वर्तमान होना जानने मानने में आई । इसी के साथ अनुसंधान का फलन रूप स्वीकारने के स्थिति में आये । उसके तुरंत बाद ही इसे मानव में अर्पित करने की विधि को पहचानने की प्रक्रिया हुई । शनैः-शनैः इस कार्य में हम प्रवृत्त हुए । इस तथ्य को हम पहचानने में सफल हुए कि अनुभवमूलक विधि से मानव कुल को परंपरा के रूप में व्यक्त होने की आवश्यकता

है और यह मानव में सफल होने के लिए सभी तथ्य से पूर्ण है।

समाधि लक्ष्य के अतिरिक्त जो कुछ भी साध्य, साधक, साधन के रूप में और मान्यताएँ मानव परंपरा में प्रचलित है वे सभी कल्पना क्षेत्र का ही सजावट होना पाया गया। क्योंकि हर धर्म के मूल ग्रंथ में भी धर्म का लक्षणों के रूप में अपने-अपने कल्पना को सजाया हुआ है । अतएव ऐसे सभी प्रकार के प्रतीक और प्रतीकों से सम्बन्धित वस्तुओं को साध्य मानते हुए, उसके लिये तत्परता को अर्पित किया हुआ भ्रमित साधक और भ्रमित साधन के संयोग में ईर्ष्या, द्वेष, श्राप, विरोध, वाद-विवाद, प्रलोभन, भय, समस्या ही समस्या देखने को मिला । इस प्रकार समाधिगामी साधना और मनोकामना प्राप्तिगामी साधनाएँ दोनों सुस्पष्ट है । उल्लेखनीय बात यही है उभय प्रकार से जूझा हुआ सभी साधक अथवा सर्वाधिक साधक, सर्वसुख को चाहने वाले होते हैं ।

इतने दीर्घकालीन परिश्रम से अभी तक सर्वसुख का मूलरूप अथवा सार्वभौम रूप को पहचानने में भी अड़चन रहा है क्योंकि रहस्य के आधार पर, उपदेश के आधार पर, प्रयोगशालाओं में स्थापित शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी दूरदर्शी और जितने भी क्षारीय अम्लीय किरण-विकिरण संयोग पाकर कार्य करने वाले रस रसायनों के विश्लेषणों से भी सर्वसुख विधि निकल नहीं पायी । करोड़ों में, अरबों में एक व्यक्ति रहस्यवादी विचारधारा के आधार पर स्वान्तः सुख विधि को पा चुके हैं क्योंकि यह स्थली हमें देखने को मिला है । इससे भी सर्वशुभ

होने का रास्ता, दिशा, सूत्र, व्याख्या, अध्ययन विधि, प्रक्रिया परम्परा गम्य नहीं हो पायी । यह भी इसके साथ समीक्षीत हुई, कोई भी व्यक्ति स्वान्त: सुख को प्राप्त करने के बाद भी विभिन्न समुदायों के परस्परता में निहित द्रोह-विद्रोह, शोषण, युद्ध समाप्त नहीं हो पाया है । इतना ही नहीं हर समुदाय में निहित अन्तर्विरोध की शांति नहीं हो पायी । विज्ञानवाद युद्धोन्मुखी-संघर्षोन्मुखी होने के आधार पर इस शताब्दी के अंत तक सर्वाधिक प्रभावित रहा देखने को मिल रहा है । यही विगत का समीक्षा है । संघर्ष-युद्ध समाधान अथवा सर्वशुभ का आधार नहीं हो पाया ।

जागृति विधि और अभ्यास

अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, दर्शन, आचरण ध्रुवीकृत रूप में अध्ययन गम्य होना देखा गया है । जीवन ज्ञान जीवन में सम्पन्न होने वाली क्रियाओं का परस्परता सहज ध्रुव बिन्दुओं के आधार पर उभय तृप्ति विधि सर्व शुभ एवं समाधान से देखा गया अभिव्यक्तियाँ है । जैसा मन और तृप्ति में सामरस्यता का बिन्दु, विश्लेषण, तुलन पूर्वक आस्वादन के रूप में पहचाना गया है । यह सह-अस्तित्व अनुभव के पश्चात् नियम, न्याय, धर्म, सत्य सहज प्रयोग में अनुभूत होने के उपरान्त ही सार्थक हो पाता है । इसके लिये अर्थात् ऐसे अनुभूति के लिये अध्ययन क्रम से आरंभ होता है । अध्ययन अवधारणा क्षेत्र का भूरि-भूरि वर्तमान विधि है । इस विधि से जितनी भी अवधारणाएँ अध्ययन से सम्बद्ध होता गया, उतने ही अवधारणा के आधार पर प्रवृत्ति सहज न्याय, धर्मात्मक और

सत्य सहज तुलन, न्याय तुलन सम्पन्न विचार के आधार पर किया गया आस्वादन सहित, सम्पन्न किया गया सभी चयन न्याय रूप होना देखा गया है । इसी प्रकार ऊपर कहे चिन्तनपूर्वक जब चित्रण, तुलन, विचार, आस्वादन और चयन क्रियाएँ सम्पन्न होते हैं न्यायपूर्वक व्यवस्था में प्रमाणित होना देखा गया । अवधारणाएँ स्वाभाविक रूप में ही अस्तित्व सहज होने के आधार पर सह-अस्तित्व रूप होने के आधार पर अनुभूत होना अर्थात् जानना-मानना और उसके तृप्ति बिन्दु को पाना ही अनुभव है । जानना-मानना-पहचानना ही अवधारणा है। इसमें तृप्ति बिन्दु को पा लेना ही अनुभव है । इसे कार्य-व्यवहार व्यवस्था में व्यक्त कर देना प्रामाणिकता है । अनुभव प्रमाण पूर्ण बोध सहित सम्पन्न होने वाले संकल्प, चिन्तन, चित्रण, न्याय, धर्म, सत्य रूपी तुलन, विश्लेषण आस्वादन सहित किया गया सम्पूर्ण अभिव्यक्तियाँ, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करता हुआ ही देखने को मिलता है । इस विधि से जागृतिपूर्ण मानव ही अस्तित्व में भ्रम बन्धनों से मुक्त होना स्पष्ट किया जा चुका है । जागृति विधि, अध्ययन रूपी साधना विधि से सर्वाधिक उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील होना देखने को मिला है । इस विधि से साध्य, साधक, साधन का सामरस्यता स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होना देखा गया है ।

जागृति के लिये हर मानव साधक है । साध्य जागृति ही है । साधन जागृतिगामी अध्ययन प्रणाली है । इस क्रम में परम्परा साधन प्रतिष्ठा के रूप में तन-मन-धन व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण मानवाकांक्षा

के रूप में होता ही है । इस प्रकार से साध्य-साधक-साधन का संयोग मानवीयतापूर्ण परंपरा विधि से सफल होने का स्वरूप स्पष्ट है । ऐसे परंपरा के पूर्व (जैसे आज की स्थिति में भ्रमित समुदाय परंपराएँ) मानवीयतापूर्ण परंपरा में संक्रमित होने की कार्यप्रणाली मुद्दा है । इस क्रम में अनुसंधान के अनन्तर जितने भी शोधकर्ता सम्मत होते जाते हैं और सम्मति के अनुरूप निष्ठा उद्गमित हो जाती है और भी भाषाओं से स्वयं स्फूर्त निष्ठा उद्गमित होती है । ऐसे ही निष्ठावान मेधावी इस कार्य में संलग्न है । यही आज की स्थिति में जागृतिगामी अध्ययन, जागृतिमूलक अभिव्यक्ति सहज विधि एक से अधिक व्यक्तियों में प्रमाणित होने का आधार बन चुकी है । जागृतिपूर्ण परंपरा में साध्य, साधन, साधक में नित्य संगीत होना देखा गया है । दूसरे भाषा में नित्य समाधान होना पाया गया है ।

उल्लेखित अनुभवों के आधार पर सम्पूर्ण जागृति अपने-आपसे जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में ही सम्पूर्ण है । इसका अभ्यास विधि सर्वप्रथम अनुसंधान दूसरा अध्ययन पूर्वक शोध, शोध पूर्वक अध्ययन ये ही मूल अभ्यास है । क्योंकि अध्ययन विधि से ही, शोध विधि से ही अवधारणा का स्वीकृत होना देखा जाता है । अन्य विधि जैसे उपदेश विधि में भ्रमित होने की संभावना सदा बना ही रहता है ।

हर परंपरा में अपने ढंग की आदेश प्रतिष्ठा स्थापित रहता ही है । वह अध्ययवसायिक (अध्ययनगम्य) होते तक उपदेश या सूचना मात्र है । परंपरा में जिस आशय के लिये

आदेश-निर्देश है वह तर्क संगत-व्यवहार संगत बोध होने की प्रक्रिया प्रणाली पद्धति ही अध्ययन कहलाती है । तर्क का सार्थक स्वरूप विज्ञान सम्मत विवेक और विवेक सम्मत विज्ञान होना देखा गया । प्रयोजन विहीन उपदेश प्रयोग वह भी व्यवहार, प्रमाण विहीन उपदेश तब तक ही रह पाता है जब तक तर्क संगत न हो । तर्क का तात्पर्य भी इसी तथ्य को उद्घाटित करता है । तृप्ति के लिये आकर्षण प्रणाली (भाषा प्रणाली) ऐसे तर्क सहज रूप में ही विज्ञान के आशित विश्लेषणों को विवेक से आशित प्रयोजनों का प्रमाणित होना सहज है । हम इस बात को समझ चुके हैं कि प्रयोजनपूर्वक जीने के लिये, प्रमाणित होने के लिये समाधान समृद्धि के रूप में सह-अस्तित्व दर्शन के लिये तर्क संगत अध्ययवसायिक विधि का होना आवश्यक है ।

अध्ययन क्रियाकलाप, तर्कसंगत प्रयोजन, प्रयोजन संगत मानवापेक्षा, मानवापेक्षा संगत जीवनापेक्षा, जीवनापेक्षा संगत सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व संगत विकास क्रम और विकास, विकासक्रम और विकास संगत जीवन-जीवनी क्रम-जागृति क्रम-जागृति एवं इसकी निरंतरता सह-अस्तित्व सहज लक्ष्य है । अस्तित्व सहज लक्ष्य में भी मानव ही अविभाज्य है और दृष्टा है । इसलिये मानव अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व विधि से पूरकता-उदात्तीकरण, पूरकता-विकास, पूरकता-जागृति सूत्रों के आधार पर सह-अस्तित्व सहज अध्ययन सुलभ हुआ है।

सम्पूर्ण अस्तित्व ही व्यवस्था के स्वरूप में वर्तमान होना समीचीन है। आज भी मानव के अतिरिक्त सभी अवस्था में

(पदार्थ, प्राण, जीव अवस्था) अपने-अपने त्व सहित व्यवस्था में होना दिखता है । इसी क्रम में मानव भी अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज अपेक्षा को सार्थक बनाने के क्रम में ही जागृत होना पाया जाता है ।

हम यह पाते हैं कि जागृति सूत्र व्याख्या और प्रमाण सर्वशुभ के स्वरूप में ही वैभवित होता है । इस आशय को लोकव्यापीकरण करना भी सर्वशुभ कार्यक्रम का एक बुनियादी आयाम है । इसी सत्यतावश **''अनुभवात्मक अध्यात्मवाद''** एक प्रस्तुति है । हर मानव अपने कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता पूर्वक ही हर प्रस्तुतियों को परखना (परीक्षण करना) स्वीकारना या अस्वीकार करने के कार्यकलाप को करता है । मानव अपने में ही पाये जाने वाले कल्पनाशीलता-कर्मस्वतंत्रतावश ही कार्यप्रणालियों की दिशाओं को परिवर्तित करता है । जैसे राजशासन राजकेन्द्रित दिशा से छूटकर लोककेन्द्रित दिशा के लिए तड़प रहा है । दूसरे भाषा में राजतंत्र से छूटकर लोकतंत्र की अपेक्षा बलवती हुई है । मान्यताओं पर आधारित (अथवा मान्यता केन्द्रित) रूढ़ियों के स्थान पर सार्थकता की ओर नजरिया को फैलाने की प्रवृत्तियाँ मानव में उदय हो चुकी है । मान्यता का दूसरा आयाम रहस्यमूलक गाथाओं के आधार पर मानव अपने कार्य नीतियों, व्यवहार नीतियों को निर्धारित रहने के लिए विवश रहते आया है । उसमें पुनर्विचार की आसार जैसे-समझदारी के आधार पर कार्य-व्यवहार, उत्पादन-विनिमय, स्वास्थ्य-संयम, शिक्षा, न्याय जैसी प्रवृत्तियों को सार्वभौमता की ओर दिशा परिवर्तन की आवश्यकता बलवती होती जा रही है ।

इससे पता चलता है-हम मानव एक ऐसा अभ्यास विधि चाहते हैं जो सर्वमानव में स्वीकृत हो, प्रयोजनशील हो। इन दो ध्रुवों के आधार पर ही मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा का अर्थ, प्रयोजन और प्रणाली, पद्धति, नीति स्पष्ट हो गये है । मानवापेक्षा अर्थात् मानव लक्ष्य जीवनापेक्षा अर्थात् जीवन मूल्य है ।

अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन विधि से उक्त मुद्दे पर हर व्यक्ति के पारंगत होने का अवसर, आवश्यकता और प्रत्येक मानव जीवन में निहित अक्षय बल रूपी साधन वर्तमान रहता है । समझदारी के आधार पर ही मानव में जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को सार्थक बनाने की विधि प्रमाणित होती है । मानवापेक्षा क्रम में जीवनापेक्षा अविभाज्य रूप में वर्तमान रहता है । मुख्य मुद्दा इसमें यही है, सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक ही हर मानव सुखी होता है और सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक हर परिवार समृद्ध होता है । समाधान का धारक-वाहक प्रत्येक मानव ही होना देखा गया है । मानव में भी केवल 'जीवन' को धारक वाहक होना देखा गया है । जीवनापेक्षा सदा ही जागृति मूलक होता है । जागृति जीवन सहज आवश्यकता मानव सहज परंपरा में निरंतर समीचीन है जिसके लिये हर मानव का जिज्ञासु रहना सुस्पष्ट है । अतएव जीवनापेक्षा मानवापेक्षा अपने आप में नित्य प्रभावी होना देखा गया है इसी के साथ-साथ सर्वमानव में यह प्रभाव होना देखने को मिलता है । जीवनापेक्षा का प्रमाण ही मानवापेक्षा और मानवापेक्षा का प्रमाण ही जीवनापेक्षा का होना देखा गया है ।